मनुष्यों की तीन प्रवत्तियाँ

मनुष्य तीन प्रवृत्ति के होते हैं. पहली प्रकार के ऐसे लोग होते हैं जिनका ध्यान शरीर पर अधिक होता है. खाना, पीना, सोना और विषय भोग कर लेना, इनका मुख्य ध्येय होता है. इन्हँ न अच्छे -बुरे से कोई मतलब, न यह परमात्मा नाम की किसी चीज़ को जानते हैं. इनके सिद्धांत के मुताबिक मनुष्य शरीर मिला है वासनाओं की पूर्ति के लिए - खाओ, पियो और मौज़ उड़ाओ. ईश्वर चर्चा से यह दूर रहते हैं. अगर कभी इनसे ईश्वर के बारे में वार्ता भी की जाये तो उसको वो नहीं मानते, उसे ढोंग बताते हैं. कहते हैं कि ईश्वर कोई चीज़ नहीं है, किसने देखा है, इत्यादि. यह लोग सबसे निचली अवस्था के हैं. पशु योनी में गिने जाते हैं. इनके मन का अभी विकास नहीं हुआ है. सोचने -विचारने की शक्ति केवल जानवरों के दर्ज़े की ही है. इन पर ईश्वर चर्चा का कोई प्रभाव नहीं होता और न ही ये लोग उसके पात्र हैं. इसलिए इनके लिए शास्त्रों में कर्म करने का विधान है. कर्म करते - करते इनके मन का विकास होने लगेगा. उसके बाद इन्हें गुरु की आवश्यकता महसूस होगी.

दूसरी प्रवत्ति के मनुष्य वे होते हैं जिनके मन का अच्छी तरह विकास हो चुका है. अच्छाई - बुराई को ख़ूब समझते हैं. बुरी बात से बचना चाहते हैं और अच्छी बात अपनाना चाहते हैं. वे परमात्मा को मानते हैं और उससे डरते हैं. ऐसे लोगों की संख्या सबसे अधिक है. दुनियाँ में इसी श्रेणी के मनुष्य सबसे अधिक हैं और इनको ही आध्यात्मिक सहायता की ज़रूरत है ताकि वे आत्मा को बलवान बना कर उसे मन के बन्धन से आज़ाद करा सकें.

ऐसे लोग कुछ -न -कुछ पिछली कमाई किये होते हैं, सुःख और शान्ति के खोजी होते हैं. उनका जी तो चाहता है कि हम बुराई की बातों से बचें, अच्छे -अच्छे काम करें, परमात्मा की प्राप्ति हमें हो जाये जिससे हम हमेशा की शान्ति पा जायें. लेकिन पिछले संस्कारों के वश वे ऐसे काम कर डालते हैं जिन्हें वे करना नहीं चाहते. ऐसा इसलिए होता है कि मन जन्म -जन्म से उस काम का आदी है और उनकी आत्मा इतनी कमज़ोर हो गयी है कि मन उस पर हावी हो जाता है. वह चाहते हैं अच्छा कर्म करना, हो जाता है बुरा. यह द्वन्द की अवस्था है. ऐसे लोगों को ही गुरु की आवश्यकता है. मनुष्य योनी बीच की योनी है. पशुओं से ऊँची और देवताओं से नीचीं. इसलिए इसमें भले -बुरे का ज्ञान होता है. यहाँ मन का प्रमुख स्थान होता है. मन तीन प्रकार का होता है - सात्विक मन, राजसी मन और तामसी मन. सात्विक मन - जो अच्छाई की तरफ़ ख़्याल रखे, बुराई का जहाँ नाम भी न हो, देवताओं की -सी ख़सलत (स्वभाव). राजसी मन - जो अच्छाई-बुराई दोनों में बरतें, इन्सान की-सी ख़सलत (स्वभाव). तामसी मन - जो हमेशा बुराई में ही बरते. क्या अच्छाहै, क्या बुरा है, यह ख़्याल न हो- जानवरों की-सी ख़सलत (स्वभाव).

इन्सानी ख़सलत वालों के लिये कर्म बन्धन नहीं है. ये प्रेम के भूखे हैं. ये मन के घाट पर अटके हुए हैं जो बीच का घाट है, कभी ऊपर को खिंच जाते हैं, कभी नीचे को. ऐसे ही लोग परमार्थ के सच्चे खोजी होते हैं और अगर वक्त के पूरे सदगुरु इन्हें मिल जायें और पूर्ण समर्पण हो तो उनका कल्याण हो जाता है.

दैवी प्रवत्ति के वे लोग होते हैं जिन्होंने पिछले जन्म में ही सब-कुछ कमाई कर ली है पर कोई ऐसा संस्कार या ख़्वाहिश मरते वक्त बाक़ी रह गयी थी जिसको पूरा करने या भोगने के लिये जन्म लेना पड़ा. इनके अन्दर बुराई का अंश नहीं होता. ये ख़ुद हमेशा अच्छाई ही अच्छाई में बरतते हैं और दूसरों को भी वैसा करने को कहते हैं. इनकी ख़सलत (स्वभाव) देवताओं की-सी होती है. इन्हें करना -धरना कुछ नहीं पडता. जिस संस्कार के वश आये थे उसे भोग कर वापस अपने धाम को चलें जाते हैं. इन्हें ज़्यादा मदद की ज़रूरत नहीं होती. केवल नाम -मात्र के लिये गुरु धारण किया करते हैं.

जिस तरह तीन प्रवत्ति के मनुष्य होते हैं उसी तरह गुरु की भी तीन श्रेणियां हैं -(१) गुरु (२) सदगुरु, और

(३) परमगुरु, यानी जिस्मानी, ख़्याली और रूहानी गुरु. जो लोग निचली अवस्था के हैं, जिनका बाहरी रूप (यानी माद्दा पर) ध्यान ज़्यादा है, मन का विकास अभी पूरा नहीं हो पाया, गुरु का शरीर ही उनका गुरु है. जो लोग इससे ऊँची अवस्था प्राप्त कर चुके हैं, मन पूरी तरह विकसित हो चुका है, गुरु का ख़्याल ही उनका गुरु है. दूसरे शब्दों में यों समझ लीजिये कि ध्यान करते वक्त गुरु का शरीर उनके ध्यान में नहीं आता बल्कि गुरु का ख़्याल ही उनके सामने होता है. उनके अन्दर शब्द जारी हो जाता है और प्रकाश दिखायी देने लगता है. यहीं सदगुरु हैं .

परमगुरु परमात्मा को कहते हैं जो सबका गुरु है. देहधारी गुरु का सहारा लेकर सदगुरु यानी शब्द और प्रकाश तक पहुँचते हैं. शब्द और प्रकाश का सहारा लेकर साधक में प्रेम पैदा हो जाता है. उसके बाद परमगुरु यानी परमात्मा के देश में पहुँच जाते हैं, यानी ॐ का ख़्याल आने लगता है और चारों गतियों (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य) से गुज़र कर उससे मिलकर एक हो जाते हैं. इन्हीं जीवन मुक्त आत्माओं को आध्यात्मिक गुरु (रूहानी गुरु) कहते हैं. इनके अन्दर सिवाय परमात्मा के प्रेम के और कोई ख़्वाहिश नहीं होती. सब ख्वाहिशें चाहें वे इंद्रिय, मन, बुद्धि के मुताल्लिक हों, जलकर ख़त्म हो जाती है. यहीं गुरु कहलाने के लायक़ हैं. इनकी सोहबत में बैठने, इनके वचन सुनने, इनका ख़्याल करने से आहिस्ता -आहिस्ता मन -बुद्धि के पर्दे कट जाते हैं. आत्मा अपने असली रूप में ज़ाहिर होती है, परमात्मा का प्रेम दिन पर दिन बढ़ने लगता है और जिज्ञासु एक दिन अपने प्रीतम से मिलकर एक हो जाता है. " पारस लोहा कंचन करत , गुरु करें आप समान ."

राम संदेश - जून १९९१.